© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

वैदिक साहित्य में प्रयुक्त संभारों का महत्त्व

डॉ0 मनोज कुमार अग्रहरि
(प्रवक्ता)
जय नारायण चमेला देवी महाविद्यालय
करछना, इलाहाबाद

वेद–सम्मत यज्ञानुष्ठान में देवयजन के लिए यज्ञ–भूमि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार भूमि के ऊपरी भाग को खनन कार्य द्वारा हटा लेना चाहिए। ताकि थूक आदि से अपवित्र भू–भाग खनन द्वारा हट जाये। उस समय 'उद्धन्यमानम्' इस मन्त्र का जाप किया जाता है।[i] ऐसी मान्यता है कि खनन कार्य से भूमि को कुछ वेदना सहनी पड़ती है; अतः उसे शान्त करने के लिए शांति के प्रतीक जल से प्रयोग करते हुए ''आपो वै शान्ताः'' नामक मन्त्र का उच्चारण किया जाता है।[ii]

तत्पश्चात् यज्ञ भूमि में अर्थात् देवयजन भूमि में संभारों का प्रक्षेप करना चाहिए। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार, ''सिकतादयो द्रव्यविशेष देवयजन भूमौ प्रक्षेपणीयाः संभाराः''।[iii] अर्थात् सिकता (बालू) आदि द्रव्य विशेष, जो देवयजन भूमि पर प्रक्षेपित किया जाता है, संभार कहलाता है। इसके अंतर्गत पार्थिव और वनस्पति संभारों का उल्लेख प्राप्त होता है;[iv] जो इस प्रकार हैः

(क) पार्थिव संभारः–

सिकता (बालू):– यह देवयजन भूमि में प्रक्षेपित किये जाने वाले पार्थिव संभारों में पहला संभार है। यह वैश्वानर का रूप अर्थात् दिव्य ज्योति कहा गया है– ''वैश्वानरस्य रूपम्[v]''। इसलिए यज्ञभूमि को दिव्यमय बनाने के लिए 'सिकता' भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए।

ऊषर भूमिः– यज्ञभूमि में निवपन करने वाले संभारों में ऊषर भूमि दूसरा संभार है। पशु आदि ऊषर क्षेत्र अर्थात् लवणयुक्त भूमि, जो पृथ्वी का एक भाग है, में उत्पन्न रसादि से युक्त तृणों को खाकर पुष्ट सन्तति उत्पन्न करते हैं। इसलिए अग्नि के आधान के लिए ऊषर–भूमि की आवश्यकता होती है। क्योंकि यह यजमान को हृष्ट–पुष्ट करता है और प्रजनन शक्ति प्रदान करता है। यह क्षेत्र पशु संज्ञा वाला होता है, क्योंकि पशु ही सूँघकर उस क्षेत्र को पहचान सकते हैं कि वह भूमि ऊषर है या नहीं। इसलिए ऊषर भूमि की मिट्टी अग्न्याधान के स्थान पर निवपन करना चाहिए।

इस निवपन के समय ध्यान विशेष को कहते हुए तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि[vi], सृष्टिकाल में द्युलोक और पृथ्वी लोक के बीच में अन्तरिक्ष नहीं था। इसलिए प्राणियों के अवकाश (खाली जगह) के लिए देवताओं की अनुज्ञा से उन्हें परस्पर अलग होना पड़ा। वियोग के समय स्नेहातिशय से वे इस प्रकार बोले कि हम दोनों (देव और मनुष्य) यज्ञ के योग्य, जो भूमि का सार तत्त्व है, वहाँ यानि उस भूमि में एक साथ रहेंगे। इस प्रकार द्युलोक का सार–भूत जो यज्ञीय भाग है, वह पृथ्वी में ऊषर भूमि के रूप में प्रतिष्ठित है और पृथ्वी का जो यज्ञगत् सारभूमि है, वह द्युलोक में चन्द्रमा के रूप में काला–काला दीखता है। इसलिए भूमि के सार तत्त्व ऊषर के निवपन काल में उसके कृष्ण रूप का ध्यान करना चाहिए। उसी प्रकार द्युलोक से सम्बन्धित ऊषर भूमि में अन्याधान होता है, ''द्यावापृथिवी सहाऽऽस्ताम्। ते वियती अब्रूताम। अस्त्वेव नौ सह यज्ञियमिति। यदमुष्या यज्ञियमासीत्। तदस्यामदधात्। त ऊषा अश्रवन्। यदस्या यज्ञीयमासीत्। तदमुष्यामदधात्। तदद□चन्द्रमसि कृष्णम्। ऊषान्निवपन्नदोध्यायेत्। द्यावापृथित्योरेव यज्ञियेऽग्निमाधत्ते, इति।''

आखुकरीष भूमिः– अग्नि कभी किसी कारणवश देवताओं से रूठ कर अपने को मूषक के रूप में करके भूमि के अन्दर बिल बनाकर उसके अन्दर विलीन हो गये। उस भूमि को कुरेदकर जो बिल बनाया गया था, उसी मिट्टी को 'आखुकरीष' कहा जाता है। उस मिट्टी में अग्नि का तेज रहता है। जो यजमान इस संभार का प्रयोग करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है, ''अग्निर्देवेभ्यो निलायत। आखूरूपं कृत्वा। स पृथिवीं प्राविशत्। स ऊतीः कुर्वाणः पृथिवीमनुसमचरत्। तदाखुकरीषमश्रवत्। यदाखुकरीष□संभारो भवति। यदेवास्य तत्र न्यक्तम्। तदेवावरून्द्धे, इति।''[vii]

ऊर्क द्वारा निर्मित भूमिः– 'ऊर्क' शब्द का अर्थ है– पिपीलिका के समान वह जन्तु (कीट) विशेष, जो भूमि को कुरेदकर उसके गीले भाग को ऊपर उठा देते हैं, उन्हें ''ऊर्क' कहते हैं– ''उपदीकाः पिपीलिकासमाना आर्द्रीकृतमुत्तिकोपचयक्षमा जन्तवस्ते हि पृथिव्याः संबन्धिनभूक्र्शब्दाभिधेयम्''।[viii] इस प्रकार ऊर्क द्वारा उठायी गयी मिट्टी को चतुर्थ संभार के रूप में अपनाया गया है। इसमें पृथ्वी का सम्पूर्ण सार–तत्त्व विद्यमान रहता है। इसके प्रयोग से यजमान श्रोत्रेन्द्रिय में सामर्थ्य प्राप्त करता है; क्योंकि कहा जाता है कि वाल्मीकों का सुनने का कारण पृथिवी हैं– ''वल्मीकस्य पृथिवीश्रोत्रत्वात्''।[ix] इसकी प्रशंसा में कहा गया है– 'अबधिरो भवति। य एवं वेद', इति।

कर्दभ (कीचड़ भूमि):– तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार प्राचीन काल में कभी प्रजापति द्वारा सृष्ट प्रजाओं के लिए जो अन्न था, वह क्षीण (कम) हो गया। तब प्रजाओं के लिए अशोष्य–जल प्रदेश से (जहाँ हर समय पानी ही पानी है, वहाँ से) कर्दभ (कीचड़) उठाकर पृथिवी के अलग–अलग भागों में फैला दिया गया। तब से वहाँ सत्य रूप से अक्षीयमाण रूप में प्रजाओं का अन्न उत्पन्न होने लगा। इसी कर्दभ को पंचम् संसार के रूप में अग्न्याधान क्षेत्र में स्थापित किया जाता है। इससे यजमान का घर सदैव अन्य से अक्षय रहता है।

शर्करा :– तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार सृष्टि के आदि में, यह जो दृश्यमान गिरि, नदी, समुद्र आदि स्थावर और मनुष्य आदि जो जंगम प्राणि आदि हैं, नहीं थे। यह सृष्टि केवल सलिल रूप में ही था। 'सलिल' शब्द 'षल् गतौ' औणादिक 'इलच्' प्रत्यय से बना है।[x] यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् सलिल कारण के द्वारा अलग–अलग नहीं किया गया था। जैसा कि कहा जाता है कि यह लोक ही सलिल है– ''इमें वै लोकाः सरिरम्''[xi]। इस प्रकार सलिल शब्द से मुख्यतः लोक ही सूचित होता है। यह सृष्टि जलरूप ही था, उसका भूमि स्वरूप नहीं हुआ था। तब प्रजापति ने उस जल से जगत के लिए श्रम किया। चारों ओर चक्षु–निक्षेप युक्त तप किया। यह समस्त जगत् किस प्रकार होगा, यह विचार किया और तभी उस सलिल के बीच में दीर्घनाल के अग्रभाग में एक पद्म–पत्र अवस्थित देखा। उसको देखकर यह मन में विचार आया कि जिसको आधार मानकर यह नालयुक्त पद्म–पत्र अवस्थित है। वह वस्तु निश्चित रूप से जल के नीचे है; ऐसा सोचकर वराह बनकर उसी का रूप धारण कर पद्म–पत्र नाल के समीप जल के अन्दर निमग्न हुए। जल के नीचे जाकर वह भूमि प्राप्त किया, जिसे आधार बनाकर पद्म–पत्र दिखाई दे रहा था। उस भूमि से कुछ गीली मिट्टी को अलग–अलग करके जल के ऊपर ले आये और उस मृद्रुप को पद्म–पत्र में प्रसारित कर दिया। चूँकि इस मृत्तिका को फैलाया गया था; इसलिए उसका नाम पृथिवी हुआ। उसी से सन्तुष्ट यह स्थावर जंगम का आधारभूत वस्तु को पृथिवी कहते हैं। चूँकि वह हुआ था, 'भवतीति भूमिः',[xii] इसलिए भूमि को भूमि कहते हैं। उस आर्द्र (गीली) भूमि के जल को सुखाने के लिए चारों दिशाओं में प्रजापति ने वायु को प्रवर्तित किया। उस आर्द्र–भूमि को सुखाते हुए प्रजापति ने उस भूमि में 'शर्कर' खण्डों (क्षुद्र पाषाण) को दृढ़ किया। जिसके द्वारा प्रजापति ने हमें सुख प्रदान किया, इसलिए 'शं सुखं कृतमाभिः'[xiii] इस व्युत्पत्ति से 'शर्करा' नाम सम्पन्न हुआ। इसी 'शर्करा' नामक संभार को छठवें संभार के रूप में देवयजन भूमि में प्रयोग किया जाता है, क्योंकि शर्करा द्वारा भूमि को दृढ़ किया गया था, इसलिए यज्ञभूमि को दृढ़ करने के लिए 'शर्करा' को भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए, जिससे कि यजमान का सुख और शांति प्रतिष्ठित हो सकें।

रेत (हिरण्य):– तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार, किसी समय अप् देवता वरूण की भार्या कामुक होकर अग्नि से सम्भोग किया था। अग्नि की व्यग्रता से उसका रेत भूमि पर गिर गया और हिरण्य बन गया। इसी हिरण्य को सप्तम् संभार के रूप में यज्ञ भूमि में अपनाया गया है, जिससे यजमान अत्यन्त कीर्तिवान और समृद्धिवान होता है।

(ख) वनस्पति संभारः–

अश्वस्थ वृक्षः– तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार किसी समय अग्नि देवताओं को छोड़कर दूर भाग गये और अश्व का रूप धारण कर 'अश्वस्थ वृक्ष' में छिपकर बैठ गये। 'अश्वस्तिष्ठति इति',[xiv] अश्व इस वृक्ष में स्थित है, इस व्युत्पत्ति से उस वृक्ष का नाम अश्वस्थ पड़ गया। इसी अस्वस्थ वृक्ष को अग्न्याधान का एक संभार माना गया है क्योंकि इसमें अग्नि का तेज होता है। जिसके फलस्वरूप यजमान तेजमय हो जाता है।

उदुम्बर वृक्षः– ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार देवतागण एक बार एक साथ मिलकर कभी अन्नरस बाँटकर आस्वाद ले रहे थे। वे जिस स्थान पर अन्नरस बाँट रहे थे, उस स्थान पर उसके कुछ बूँद भूमि पर गिर पड़े। उसी अन्नरस से उदुम्बर का वृक्ष बना। इस प्रकार अन्नरस का प्रतीक उदुम्बर वृक्ष भी अन्याधान का एक संभार है; इससे यजमान भरपूर मात्रा में अन्नरस प्राप्त करता है– ''देवा वा ऊर्जंव्यश्रजन्त। तत् उदुम्बर उद्रतिष्ठत्। ऊग्र्वा उदुम्बरः। यदौदुम्बरः संभारो भवति। ऊर्जमेवावरून्हे, इति।''[xv]

पलाश वृक्षः– वनस्पति संभारों में से पलाश वृक्ष भी एक संभार है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार, द्युलोक (तृतीय लोक) में सोमवल्ली स्थित था, जिसे गायत्री देवता ने सोम रक्षक के साथ युद्ध करके प्राप्त किया था। उसी सोम लता की एक पत्ती अकस्मात् टूट कर सद्भूमि (यज्ञ भूमि) में गिर पड़ी। उसी से पलाश वृक्ष हुआ। चूँकि यह पर्ण से उत्पन्न हुआ था, इसलिए इसका नाम पलाश हुआ– ''पर्णजन्यत्वात्तस्य वृक्षस्य पर्णनाम संपन्नम्''।[xvi] यजमान इस संभार के प्रयोग द्वारा सोमपान के गुणों को प्राप्त करता है।[xvii] अर्थात् आनन्द प्राप्त करता है। इसके साथ ही साथ वह ब्रह्मवर्चस्व भी प्राप्त करता है। इसके बारे में कहा गया है कि एक बार देवतागण पलाश वृक्ष की छाया में बैठकर परस्पर ब्रह्म के विषय में संवाद कर रहे थे। पलाश वृक्ष के समीप इन मन्त्रों का उच्चारण करने से उस पलाश वृक्ष ने सब कुछ सुन लिया। अच्छी तरह सुनने के कारण 'सुश्रवा' भी इसे कहा जाता है। इस प्रकार मन्त्र को अच्छी तरह से सुनने के कारण पलाश वृक्ष को यजमान द्वारा संभार रूप में प्रयोग करने से वह (ब्राह्मण) ब्रह्मवर्चस्व को प्राप्त करता है।

शमी वृक्षः– तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार चतुर्थ संभार के रूप में शमी वृक्ष को अपनाया जाता है। इससे अग्नि का दाहकत्व भाव शान्त रहता है। कहा जाता है कि प्रजापति ने अग्नि को उत्पन्न किया था; कहीं यह मुझे जला न दें, यह भय उन्हें बारम्बार सताता रहता था। इसी भय से उन्होंने शमी वृक्ष की शाखा से अग्नि को शान्त कर दिया। 'शमयति अनेन' [xviii] इस व्युत्पत्ति से 'शमी' नाम सम्पन्न हुआ है। यजमान द्वारा शमी वृक्ष के प्रयोग से अग्नि उसे जलाती नहीं है; बल्कि शान्त रहकर कार्य–सिद्धि में सहायक होती है।

विकङ्कत वृक्षः– तै0ब्रा0 के अनुसार प्रजापति द्वारा सृष्ट अग्नि ने शीघ्रतापूर्वक जाते हुए विकङ्कत वृक्ष को देखा, जिससे उस वृक्ष ने अग्नि का तेज (दीप्ति) प्राप्त कर लिया। इसी विकङ्कत वृक्ष को यजमान ने अग्न्याधान में पंचम संभार के रूप में उपयोग किया है; ताकि यजमान का यज्ञ पूर्ण दीप्ति को प्राप्त कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प तै0ब्रा0 1.1.3

पप तै0ब्रा0 1.1.3

पपप तै0ब्रा0 1.1.3.15

पअ 'सप्त पार्थिवान्संभारानाहरत्येवं वानस्पत्यान्' इति। तै0ब्रा0 1.1.3.

अ तै0ब्रा0 1.1.3

अप तै0ब्रा0 1.1.3.16

अपप तै0ब्रा0 1.1.3.16

अपपप तै0ब्रा0 1.1.3.17

पग तै0ब्रा0 1.1.3.17

ग तै0ब्रा0 1.1.3.18

गप तै0ब्रा0 1.1.3.18

गपप तै0ब्रा0 1.1.3.19

गपपप तै0ब्रा0 1.1.3.19

गपअ तै0ब्रा0 1.1.3.20

गअ तै0ब्रा0 1.1.3.21

गअप तै0ब्रा0 1.1.3.21

गअपप सोमजन्यस्य तस्य संभरणेन सोमपानमेव प्राप्नोति। तै0ब्रा0 1.1.3.21

गअपपप तै0ब्रा0 1.1.3.22